हंगेरियन कहानी

एक सितंबर की याद

• फैरेन्त्ज़ मोरा

अनुवादः भारत भूषण

ज्यों ही माँ ने उनका मोटा अँगूठीदार हाथ हमारी तरफ बढ़ाया त्यों ही वे माँ का नाम ले उठे। उनका बड़ा-सा सूर्यमुखी चेहरा मुस्कराया, पर जब माँ ने अपने कष्टों की रामकहानी खत्म की तो उनकी मुस्कान मुरझा गई। वे पत्थरों की तरह जमे रह गए।

"इतने रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? कोई बात भी तो हो? कहीं लिखा थोड़े ही है कि हरेक आदमी को अपने बेटे को जैण्टिलमैन बनाना पड़ेगा। तुम अपने बेटे को शागिर्द क्यों नहीं बना देतीं? ईश्वर तुम्हारा भला करे!'

वे गर्मियाँ भी ठीक ऐसी ही थीं, गेहूँ की बालियाँ लहलहा रही थीं, अंगूर की बेलें गुच्छों से लदी थीं। न तो पेड़ों में और सेब लगाए जा सकते थे, न बेलों में और अंगूर।

"तो बेटा, अब नई किताबें आएंगी और फसल पर नए कपड़े" पिताजी ने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा, "हाँ, सचमुच। सुनहरी बटनों वाली वास्कट, चाँदी और सोने के काम की।"

पूरे साल-भर से लज्जा का जो बोध मुझे खाए जा रहा था अब मेरे गालों पर उछल आया। प्राइमरी स्कूल के पहले दर्जे के विद्यार्थी के रूप में मेरी बड़ी लालसा थी कि मैं व्हिटसन (त्यौहार) पर अपने पड़ोसी स्त्रोसों की तरह बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनूँ। उनके लिए तो खैर यह बड़ी आसान बात थी क्योंकि उनके पिता की बजाजे की दुकान थी और वे चाहे जिस राजकुमार की तरह सज सकते थे (पीला पाजामा, लाल वास्कट और पंखदार हरा हैट) पर मुझे अपने कपड़ों की खोज-खबर खुद ही करनी थी। सौभाग्य से मुझे दूर नहीं जाना पड़ा। गली के सामने की तरफ सात घर छोड़कर ताबूत वाले चाचा मिस्टर रैवेन रहते थे, जो ताबूतों पर नया रंग चढ़ाकर अपने आँगन में सुखाया करते थे। मैंने उनके ताबूतों पर से सुनहरे कागज़ के अक्षर चुरा लिए और अपनी जाकिट के दाएं-बाएं पल्लों पर टाँक लिए। मेरी जाकिट सचमुच बड़ी सुन्दर लग रही थी और ईश्वर की कृपा से मेरी खुशी सम्राटों से भी ज़्यादा थी, जिनके सीनों पर पूरी आकाश-गंगा झिलमिलाती रहती है। पर बुजुर्गों में सौन्दर्य के प्रति वैसी रुचि नहीं होती जैसी बच्चों में होती है। मेरी माँ ने ज़बरदस्ती वे अक्षर उखड़वा दिए और चिन्तित होकर सिर हिलाने लग गईं।

"अभी तो पहले ही दर्जे में जा रहे हो। अभी से तुम्हारा यह हाल है तो आगे चलकर न जाने क्या होगा? क्या तुम्हें कभी अक्ल न आएगी?"

खैर, दूसरे दर्जे में मुझे सचमुच अक्ल आ गई। मैंने पूरी-की-पूरी पवित्र बाइबिल

पढ़ डाली, ओल्ड और न्यू दोनों टेस्टामेंट, सांग ऑफ सांग्स, द एपोकैलिप्स, और उन यहूदी राजाओं की कथाएँ पढ़कर मेरे होश अजीब तरह से ठिकाने आ गए। जब कभी पनीर के पाग को लेकर ओल्गास्त्रोस से मेरा झगड़ा छिड़ जाता तो मैं उसे जेज़ाबेल कहने लग जाता और उससे कहता, अगर तुझसे मेरी शादी हो गई तो मैं तुम पर शिकारी कुत्ते छुड़वा दूंगा (यह दृश्य मैंने बाईबिल के सुन्दर वुड-कट में देखा था)।

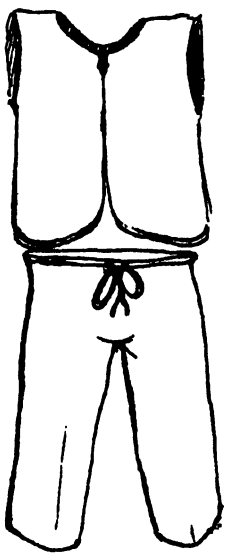

क्रोन स्ट्रीट में मुझे बड़ा ज्ञानी माना जाता था और मेरे गुण अधिकृत रूप में भी स्वीकृत हो चुके थे। तिमाही रिपोर्ट बँटने के समय मुझे बीस मोहरों का तोड़ा मिला, स्कूल भर में सबसे बड़ा, और मैं उन्हें अपनी मेज़ पर गिन ही रहा था कि पिताजी ने हँसी-हँसी में ही मुझे अपने अतीत के कलंक, ताबूत वाली उस घटना की याद दिला दी।

"इनकी बात पर न जाना बेटे!" माँ ने रसोई से झाँकते हुए कहा, "ये तो खाली मज़ाक कर रहे हैं। मैं तुम्हें एक और बात बताती हूँ। तुम्हारी इस नन्हीं पूँजी में से हम तुम्हारे पिताजी को दस मोहरें दे देंगे ताकि ये पिछले साल का टैक्स भर सकें। बाकी दस तुम मुझे उधार दे देना। उनसे हम तुम्हारे दादा-दादी की कब्र के लिए अखरोट की लकड़ी का क्रूस बनवाएंगे और दो नन्हें सुअर भी खरीद लेंगे। गर्मियों में तुम उन्हें अंगूरों की छाया में चराया करना। फसल के वक्त तक वे बड़े हो जाएंगे और जाड़ों के मेले में हम उनमें से एक को बेचकर उन रुपयों से तुम्हारी तीसरे दर्जे की किताबें खरीद देंगे। ठीक है न?"

बेशक ठीक तो है ही! रुपयों के मामले में पिताजी का ज्ञान उतना ही था जितना मेरा, इसलिए आर्थिक साम्राज्य की बागडोर माँ के ही हाथ में रहती थी। मेरे जीवन में वह पहला और आखिरी बजट था जिसकी बुनियाद पक्की थी। अगर यह स्वर्ग-स्थित अधिकारियों को पसन्द न आया तो दोष हमें नहीं दिया जा सकता।

सन्त स्टीफेन के दिन (20 अगस्त), ओलों ने अंगूरों को धराशाई कर दिया, यही नहीं उन्होंने अंगूर की बेलें भी झिंझोड़कर रख दीं। अगले दिन सवेरे, जो चाहे ओलों से अपने पल्ले (अंजुली) भर सकता था, क्योंकि पानी ने उन्हें बहाकर

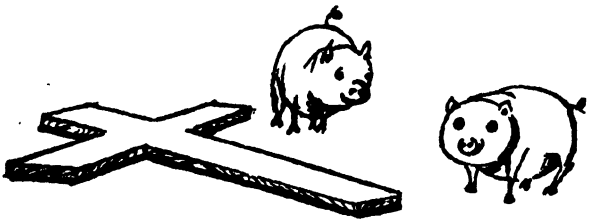

निचली जगहों में जमा कर दिया था। तभी से वह सन्त स्टीफेन का दिन हमारे परिवार के लिए एक ऐतिहासिक तिथि बन गया। यह दिन हमारे लिए पत्थर की लकीर बन गया है, और हम हरेक बात का हिसाब उसी से लगाते हैं।

स्वर्ग से हुई इस उपल-वर्षा ने दोनों नन्हें सुअरों का भी काम तमाम कर दिया। अगर पिताजी कोई रोम-सम्राट होते तो ज्योतिषीगण निश्चय ही उन सुअरों के लिए ध्रुव-तारे के आस-पास की कोई चर-भूमि निर्धारित कर देते, क्योंकि अन्य नक्षत्रीय पशुओं का भी वहीं निवास है। पर हमारी स्थिति वैसी तो थी नहीं, इसलिए हमने उन्हें चम्पे के झाड़ की छाया में ही दफ़ना दिया। इस काम में मैंने भी हाथ बँटाया और जब मैंने पिताजी को आँखों पर हथेलियाँ रखते देखा तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मैंने इससे पहले कभी किसी बुजुर्ग को रोते नहीं देखा था। खास तौर से अपने यहाँ। अब तो मैं सीख चुका हूँ कि हमारी तरह के आँसू साधारणतः अन्दर की ओर बहा करते हैं।

अब मुझे पहली बार भान हुआ कि हो-न-हो कोई बड़ी अशुभ घटना हो गई है। पर सितम्बर की पहली तारीख से पहले, 'सफेद हाथों के दिन' से पहले मैं यह न जान पाया कि वह थी क्या।

मेरी माँ दाखिले के लिए मुझे स्कूल ले गई। अपने बच्चे की उँगली थामने पर हर माँ शेरनी हो जाती है। तब उन्हें अच्छों-अच्छों से भी डर नहीं लगता।

ड्यूटी पर तैनात टीचर मिस्टर जोयोमि किसी भी रूप में डरावने न थे। वे बड़े सज्जन पुरुष थे, शहद की तरह मीठे, और जहाँ तक मैं जानता हूँ वे अपने जीवन के सायंकाल तक ऐसे ही बने रहे। यहाँ तक कि जब उन्होंने देखा कि मेरी दूसरे दर्जे वाली स्कूल-रिपोर्ट में 'वेरी गुड' के अलावा और कुछ अंकित नहीं है तो उन्होंने मेरी माँ को बैठने के लिए कुर्सी भी दी।

"तब तो माताजी आपको अपने इस नन्हें जादूगर से बड़ा सुख मिलता होगा" रूलर से मेरे भय-शुष्क चेहरे को थपथपाते हुए टीचर बोले। उम्र के लिहाज़ से मेरी माँ टीचर की बेटी के बराबर लगती थीं। पर चिन्ता की मकड़ियों के जाले उनके पच्चीसवें साल में ही बालों में उलझ गए थे। अगर कोई उनकी उम्र बढ़ा-चढ़ाकर

आँकता तो हमें कभी बुरा न लगता था। आहत दर्प ने नहीं वरन् गर्व ने मेरी माँ के चिर-विपन्न चेहरे को सेब के से रंग का बना दिया था। उन्होंने अचानक भावावेश से मेरी ओर देखा, पर फिर फौरन ही सहज हो गईं। अपने ब्लाउज़ में से उन्होंने अपना रंगीन रुमाल निकाल लिया।

"मेहरबानी करके बताएं मुझे कितना देना है?" उन्होंने टीचर से कहा और रुमाल का एक छोर खोलने लगीं।

"छह रुपए तिरपन पैसे, देवी जी!"

सेब-सा रंग धुँधला होकर बेर-सा रंग बन गया।

"हमारे पास तो सिर्फ़ एक रुपया है श्रीमान जी! मेरे रेशमी रुमाल का उस जिप्सी औरत ने इतना ही दिया। मेरे पति ने कहा कि गरीब के बच्चे को एक रुपए से ज़्यादा नहीं देना पड़ता।"

"ठीक है देवी जी, पर ऐसी हालत में आपको गरीबी का सर्टिफ़िकेट लाना पड़ेगा।" और इतना कहकर मिस्टर जोयोमि मुँह फुलाकर खानेदार कागज़ की ओर देखने लगे। जो दर्ज कर दिया है क्या उसे काट दूँ? ये मूरख औरतें कितना तंग करती हैं।

मेरी माँ ने अपने झुर्रीदार छाल-सदृश हाथ जोड़ लिए।

"श्रीमान जी, हम तो सर्टिफ़िकेट के बिना भी गरीब ही हैं। आप हमारा यकीन करें।"

मिस्टर जोयोमि ने अचानक अपनी नज़रें हटाकर सिर झुका लिया।

"वह तो मैं भी देख रहा हूँ देवी जी, और मैं इसका यकीन भी करता हूँ, लेकिन मैं कायदे के खिलाफ कैसे जा सकता हूँ। आपको टाउन हाल से कागज़ लाना ही पड़ेगा।" यों तो टाउन हाल स्कूल से दस ही कदम पर था, फिर भी था बहुत-बहुत दूर। कोई भी औरत नंगे पैरों या चट्टियाँ पहने भी वहां कैसे पहुँच सकती थी ? यह ठीक है कि रात वाले चौकीदार दोबोश से माँ की जान-पहचान थी जो टैक्स के बिल दे जाता था, पर वह तो बहरा है। और हाँ, अमीन साहब मिस्टर चयका, पर वे कितने रूखे हैं।

खैर, हम जब आखिरकार किसी तरह टाउन हाल पहुँच पाए तब दोपहर बारह बजे का घण्टा बज रहा था। और तब तक दरवाज़ा बन्द हो चुका था। बाबूजी क्राउन में बीयर पीने चले गए थे।

अब हम क्या करें? मेरी माँ अपने जीवन में कभी शराबघर में न गई थीं, न वे बाबूजी को पहचानती थीं। इसलिए हम सीढ़ियों पर बैठ गए और चुपचाप उनके आने का इन्तज़ार करने लगे। घोड़े वाले ने हमसे सवाल-जवाब किए और तब बताया कि बाबूजी लँगड़े हैं और उन्हीं से हमारा काम बनेगा। सबेरे तो वे सिर्फ एक ही पैर से लँगड़ाते हैं, पर बीयर पी लेने के बाद दोनों पैरों से लँगड़ाने लगते हैं इसलिए हम उन्हें आसानी से पहचान सकेंगे।

सचमुच हमने उन्हें पहचान लिया। उस वक्त करीब दो बजे थे। पहले तो वे बड़े मज़े से बातें करते रहे। पर ज्यों ही

वे मोड़ के पत्थर से टकराए तो वे अचानक गरम हो गए।

"यहाँ क्या लेने आये हो, वह भी इस वक्त? इसके अलावा, जहाँ तक मैं जानता हूँ, तुम्हारे पास अंगूरों का बाग भी है।"

"हाँ है तो, सिर्फ दो पट्टियाँ। एक पट्टी बिलकुल ऊसर है।"

वह लँगड़ा अब गरज उठा-

"वाह, वाह, हद कर दी! आपको गरीबी का सर्टिफिकेट चाहिए! बदमाश कहीं के, धोखेबाज़!"

वह लँगड़ाता हुआ बाज़ार के दूसरी तरफ चल दिया था, पर हमें उसकी गालियाँ अब भी सुनाई दे रही थीं। टाउन हाल के चौकीदार ने उसे सतर्क होकर सैल्यूट किया और फिर उसने अपनी आँखें हमारे ऊपर गाड़ दीं।

"चलो हटो, ए औरत! चलो यहाँ से, इसी में खैर है।"

हम कुछ-कुछ डर गए थे, पर टाउन हाल के छोर पर पहुँचते ही हम सँभल गए। मेरी माँ धुन की पक्की थीं।

"मैं क्या यों ही छोड़ने वाली हूँ। चलो बेटे, बयाकि के यहां चलें, वे तो टीचर हैं। वह हमेशा हमारी मदद करते हैं।"

मिस्टर बयाकि ने मुझे अक्षर-ज्ञान दिया था और वे फसल के वक्त हमेशा मेरे पास आते थे, यह देखने कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ। वे बड़े दयालु व्यक्ति थे पर इस मामले में वे हमारी मदद न कर सके।

"बात यह है देवी जी, जिसके पास ज़मीन-जायदाद है उसे गरीबी का सर्टिफिकेट नहीं मिल सकता।" इसके पहले मैं कभी महसूस नहीं कर पाया था कि हम लोग ज़मींदार हैं।

सच पूछिए तो हमारी जायदाद दस कलामंडियों (कुलाटियों) में पार की जा सकती थी। बल्कि दसवीं कलामंडी पर हम पड़ोसी की ज़मीन में जा पड़ते। खुशकिस्मती से सारी ज़मीन पाताल तक रेतीली थी। अगर वह चिकनी मिट्टी होती, जो कीचड़ बन सकती तो न जाने हम कब के अपनी सारी ज़मीन को अपने जूतों से चिपकाए फिरते।

टीचर ने हमें सलाह दी कि सबसे अच्छा यह होगा कि मेरे पिताजी मैजिस्ट्रेसी के उन सज्जनों से बातचीत करने की कोशिश करें जिनके यहाँ एक ज़माने में मेरे बाबा अक्सर आया-जाया करते थे। क्योंकि एक ज़माने में मेरे बाबा शहर के सबसे अच्छे तमाखू वाले थे और इसलिए उन दिनों वे मशहूर-से आदमी थे। (यह तथ्य मैं अपने भावी जीवनीकारों के लाभार्थ अंकित कर रहा हूँ। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि हमारे परिवार में ख्याति मुझसे ही आरम्भ नहीं हुई।)

हमारे शहर का हरेक अफसर मेरे बाबा से ही तमाखू कुटवाता था क्योंकि वे जानते थे कि बुढ़ऊ के हाथ में एक चिलम-भर तमाखू भी नहीं चिपकेगी।

अगले दिन जब पिताजी शरम-लिहाज़ छोड़कर टाउन हाल के इन कुमानियाई

सज्जनों के पास गए तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने मेरे बाबा को बड़े प्रेम से याद किया। पर उनसे बात करने की अनुकम्पा सिर्फ बाबूजी ने ही की पर उन्होंने जो कहा वह यही था-

"अब समझे मार्टिन कि तुम्हें लयोश कोश्शुथ के नाम का इतना डंका नहीं पीटना चाहिए था, तब तुम पर आज ऐसी उंगलियाँ न उठतीं। "

टैक्स डिपार्टमेण्ट के काउन्सलर खुद भी 1848 की क्रान्ति के हामी थे। उन्होंने इतनी सलाह ज़रूर दी, "देखो, इसी महीने एक कमीशन अंगूर के बागों में ओलों के कारण जो हानि हुई है उसकी जाँच करने पहुँचेगा। शायद वे तुम्हें कोई कागज़ दे कि ओले क्यों पड़े, कैसे पड़े। वह कागज़ तुम्हें एक दरख्वास्त के साथ काउंसिल में पेश करना होगा। वैसे स्कूल की फीस से छूट तो दी ही जा सकती है, बस ज़रा लिहाज़ की ज़रूरत है। लेकिन ईश्वर के लिए कहीं लोगों से कहते मत फिरना कि मैंने यह सलाह दी है। मैं तो यों ही बदनाम हूँ कि लोगों को उभारता रहता हूँ।"

पिताजी मुझे टाउन हाल के भीतर नहीं ले गए, वहीं दरवाज़े पर ही छोड़ दिया। वहाँ जो नोटिस चिपके थे उन्हें पढ़ता-पढ़ता मैं अपना मन बहलाता रहा। किसी डाकू को पकड़वाने के लिए सौ मुहरों के इनाम का एलान हुआ था। उस भगोड़े के सिर की कीमत मेरे देश की नज़रों में सौ मुहर थी। पर मेरा अकलंक नन्हा जीवन किसी की नज़रों में छह रुपए पचास पैसे के लायक भी न था। इसका पता मुझे तब चला जब पिताजी लौटकर आए और उन्होंने बिना कुछ कहे मेरा हाथ पकड़ लिया। बाज़ार में मोची की दुकान तक पहुँचने के पहले वे कुछ नहीं बोले। फिर बड़ी मीठी और कोमल आवाज़ में उन्होंने पूछा-

"देखा, वे बढ़िया जूते कितने अच्छे हैं?"

"हूँ" और मेरा दिल बड़े ज़ोर से धड़क उठा क्योंकि मैं पहले ही जानता था कि अगला सवाल क्या होगा।

"अगर तुम्हें मैं किसी मोची के यहाँ बैठा दूँ तो कैसा रहे?"

मेरे मुँह से एक लफ्ज़ भी न निकला। बस मैंने अपना सिर हिला दिया। तब मैं दुनिया के रंग-ढंग क्या समझता था? तब

मैं कैसे जान सकता था कि मेरे बड़े होने तक मोचियों के लिए कैसे-कैसे धन्धे खुल जाएंगे? मैं तो बस इतना ही जानता था कि मोचियों के शागिर्द गन्दे होते हैं, वे कोलतार का काम करते हैं और मुझसे मुलाकात होने पर मुझे गड्ढे में धकेल देते हैं। काश मैं तभी पहचान सकता कि दुनिया उन्हीं की है जो धक्का देते रह सकते हैं।

बाद में घर में विराट सभा बैठी। हमने सोफा, आईना, लिहाफ, ऐशो-आराम की जो-जो चीज़ें रुपया बन सकती थीं सबका हिसाब लगाया ताकि एक रुपया साढ़े छह बन जाए। यहाँ तक मैंने अपनी दो साल की बहन का पालना भी जाँच देखा, वह अब बड़ी हो गई थी और उसे कोने में भी सुलाया जा सकता था पर इन सबसे भी काम नहीं चल सकता था। अगर स्कूल की फीस निकल भी आई तो भी किताबों के लिए क्या बचेगा? हमने एक-एक करके अपने रिश्तेदारों के भी नाम लिए पर वे भी तो सब-के-सब ओलों की चपेट में आ चुके थे। अन्धा फूटी आँखों की क्या मदद करेगा?

उस रात मुझे बहुत बुरा सपना दिखा। मैं कोलतार के कढ़ाव में पड़ा हूँ, मोची के शागिर्द मेरे पैरों को कोलतार की डोर से बाँधकर घसीटते हुए बाज़ार ले जा रहे हैं। जब मैं जागा तो सपने में आँसू बहाने की वजह से मेरी आँखें सूजी हुई थीं।

तब तक पिताजी अंगूर के बगीचे पर जा चुके थे। जब भी उन पर ऐसी मुसीबतें आ पड़तीं जिन पर न हँसा जा सकता था न कोसा जा सकता था, तभी वे वहाँ जा छिपते थे। (उफ! अगर उस 'जायदाद' का मेरे पास कुत्ते की खोह बराबर हिस्सा भी बच रहता, तो मैं खुद भी न जाने कितनी बार वहाँ जा छिपता)। मेरी माँ ने मुझे गोद में भर लिया, हालाँकि हम लोग शर्मीली प्रकृति के थे और ऊँचे लोगों के रंग-ढंग के लिए हमारे पास समय नहीं होता था। यही नहीं, उन्होंने एक लम्बे-से कंघे से मेरे बिखरे बालों को तरतीब देने की भी कोशिश की।

"कोई फिकर नहीं मेरे बच्चे! अभी तुम शागिर्द हुए थोड़े ही हो। रात को मुझे राइट रेवरेण्ड आगोच का ध्यान आ गया। वे गरीबों पर बड़ी दया रखते हैं। पर देखना, उनका हाथ ज़रा अच्छी तरह चूमना।"

सचमुच राइट रेवरेण्ड आगोच बड़े भले आदमी थे। वे हमेशा चर्च के चक्कर काटते रहते थे - ऐसी प्रकाण्ड मूर्ति की तरह जिसमें अचानक जान पड़ गई हो। जब भी कोई भी औरत या बच्चा उधर से गुज़रता तो वे उसके चूमने के लिए अपना हाथ बढ़ा देते। उनका हाथ चूमे बिना वहाँ से गुज़रना किसी के भी लिए मुमकिन न था। वे शहर भर के लोगों के नाम जानते थे। ज्यों ही माँ ने उनका मोटा अँगूठीदार हाथ हमारी तरफ बढ़ाया त्यों ही वे माँ का नाम ले उठे।

"ईश्वर तुम्हें सुखी रखे, श्रीमती मीरा। कहो, क्या हालचाल है, क्रोन स्ट्रीट में कैसा

चल रहा है? क्या किसी का नामकरण होना है या कोई मर गया है?" उनका बड़ा-सा सूर्यमुखी चेहरा मुस्कराया, पर जब माँ ने अपने कष्टों की रामकहानी खत्म की तो उनकी मुस्कान मुरझा गई। वे पत्थरों की तरह जमे रह गए।

"इतने रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? कोई बात भी तो हो? कहीं लिखा थोड़े ही है कि हरेक आदमी को अपने बेटे को जैण्टिलमैन बनाना पड़ेगा। तुम अपने बेटे को शागिर्द क्यों नहीं बना देतीं? ईश्वर तुम्हारा भला करे!"

लेकिन सज्जन पूरी तरह विमुख नहीं होते। हालाँकि हमने उन्हें नाराज़ कर दिया था तथापि हमारे विदा लेते वक्त उन्होंने हमें अपना सुवासित हाथ चूमने से नहीं रोका।

अब दरअसल सारा दारोमदार मुझ पर था। यहाँ तक कि माँ ने भी मुझ से

पूछा कि मैं किस तरह का शागिर्द बनना चाहता हूँ। हे भगवान्! मैं भला इसके अलावा और क्या कह सकता था कि मैं बुकसेलर होना चाहता हूँ। मैं यह बात काफ़ी हल्के मन से कह सका और इस पर मेरी माँ के चेहरे पर भी चमक आ गई। शायद उन्हें यह ध्यान आ रहा हो कि मैं इतवार की शाम को खाई के किनारे बैठाकर उन्हें कैसी-कैसी सुन्दर कहानियों की किताबें सुना सकूंगा।

उन दिनों हमारे शहर में मिस्टर रनेज़इ ही एक-मात्र बुकसेलर थे। संयोग से उन दिनों उनकी दुकान की खिड़की पर एक नोटिस टँगा था कि वे किसी अच्छे घर के लड़के को शागिर्द बनाना चाहते हैं। इस बात का मुझे ज़रा डर था क्योंकि हमारा घर कुछ-कुछ डाँवाडोल था और कभी-कभार छत की खपरैलें खिसकने लगती थीं। पर इससे कोई कठिनाई पेश होती नहीं मालूम दी। मिस्टर रनेज़इ ने पहले तो मुझे अपनी नंगी आँखों से जाँचा और फिर चश्मा चढ़ाकर और उसके बाद उन्होंने घोषणा की कि वे मुझे बुकसेलर बना देंगे और इसके लिए वे बस तीन रुपया महीना चार्ज करेंगे।

उस दिन की शाम मैं कभी न भूल पाऊँगा। उस बार का पतझर, और सालों की अपेक्षा ज़्यादा गर्म था हालाँकि चिड़ियों ने विदा लेना शुरू कर दिया था। मेरी माँ कुएँ पर कपड़े धो रही थीं और मैं नाँद की छाया में उनके पैरों पर बैठा था। न तो उन्होंने कोई शब्द कहा न मैंने, हम बस धीमे-धीमे बिसूरते रहे। उनके आँसू नाँद में गिर रहे थे और मेरे आँसू उनके पैरों पर।

लेकिन मेरी सच्ची यातना अगले दिन सबेरे ही आई। मेरे सहपाठियों ने प्रार्थना के लिए स्कूल जाते समय खिड़की, दरवाज़े और बाड़ खटखटाई और गेट की सन्धों में से आवाज़ लगाई।

"फ्रान्सिस, फ्रान्सिस!"

इसे दान्ते अपने महाकाव्य 'इनफर्नो' (नरक) में शामिल करना भूल गए।

मैं छप्पर, सुअर के तबेले और बुर्जी में छिप गया पर बेकार; किलकते बच्चों की भनभनाहट ने मेरा पीछा न छोड़ा। एक हफ्ते के बाद यह कष्ट मेरे लिए असह्य हो उठा। जब मेरे दोस्त मेरे घर से गुज़रते, मैं नुक्कड़ तक उनके आने की बाट देखता रहता और फिर उनके पीछे दौड़ जाता। बाज़ार में मैं खोमचे वालियों के बीच टहलता रहता। आठ बजे की स्कूल की घण्टी होते ही टीचरों और लड़कों, दोनों के कदम तेज़ हो जाते। तब मैं स्कूल के चक्कर काटना शुरू करता, पहले दूर से, और फिर चक्कर लगातार छोटे होते चलते। शायद स्वर्ग का दरवाज़ा बन्द हो जाने पर आदम ने भी यही किया होगा। अगर दुनिया में ऐसा एक भी आदमी है जो यह स्वाद ले चुका हो कि आदम ने क्या भोगा था तो वह मैं हूँ।

जो हो, आदम को सिर्फ स्वर्ग से ही निकाला गया था, स्कूल से नहीं और वह सिर्फ खाने की मेज़ से ही वंचित हुआ था पुस्तकों से नहीं; वह सहा जा सकता था,

उसकी तो आदत पड़ सकती थी। चार ही दिन बाद मैं बाड़ के भीतर था। हाथ-पैरों के बल सरकता मैं हैड मास्टर के दरवाज़े के आगे से गुज़रता लम्बे, सफेदी किए कारीडोर को पार करके तीसरी क्लास के खुले दरवाज़े पर जा पहुँचा। मैं सब-कुछ सुनता रहा, टीचर की व्याख्याएं, बच्चों के जवाब, बूढ़े चपरासी का घण्टी की तरफ बढ़ना। उसकी आहट सुनते ही मैं स्कूल से पलटकर जल्दी-जल्दी घिसटता सड़क पर आ गया।

सितम्बर के मध्य तक किसी तरह की कोई मुश्किल न हुई। जिस साइंस के कुएँ से इस बेचारे, गन्दे, नन्हें बच्चे को कँटीले तारों ने अलग कर दिया था उस कुएँ से गुपचुप रीति से भी प्यास बुझाई जा सकती थी। पर हुआ यह कि टीचर मिस्टर ऐस्टिच तीसरे दर्जे में लैटिन भाषा का गुण-गान कर रहे थे। कितनी सुरीली, कितनी प्रखर कितनी कसी हुई है यह भाषा और क्यों कोई भी भाषा इसकी बराबरी नहीं कर सकती!

"लेटिन का वाक्य है : Unus es Dens इसे हंगरी भाषा में तुम में से कौन कहना जानता है?"

गहरी खामोशी।

"अरे, कोई-न-कोई तो कोशिश करो। मैथ्यू नाथ?"

मैथ्यू नाथ, एक रियासत के स्टुअर्ड का बेटा, कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी था और दूसरे दर्जे में मेरा प्रतिद्वंद्वी था। इस चुनौती पर वह उठ खड़ा हुआ!

"ईश्वर, तू एक है।"

"नहीं, यह बिल्कुल सही नहीं है। यह किस तरह का शब्द विन्यास है?"

"मेरा मतलब था ईश्वर एक तू है।"

"नहीं, नहीं; क्या तुम्हें नहीं लगता कि लैटिन वाक्य में कुछ और भी बात कही गई है?"

मेरा मन आतंक-ग्रस्त होकर धक-धक करने लगा, पर मैं अपने को रोक न सका, चीखकर कह ही उठा:

"बस तू ही ईश्वर है...'

(उसी क्षण मेरा माथा फर्श से जा टकराया) क्योंकि मैं उत्तेजना के मारे बेहोश हो गया था। उफ, यह मैंने क्या कर डाला, अब क्या होगा?

जो हुआ वह यह कि लैटिन टीचर मुझे बाँहों में भरकर क्लास में ले गए और उसके बाद 'ज़मींदार' मार्टिन मोरा से कभी कोई फीस नहीं माँगी गई। Unus es Dens बस तू ही ईश्वर है। चाहे तू कुछ दूर पर है, चाहे तुझे धरती पर नज़र डालने का ज़्यादा समय न हो...

जो हो, सितम्बर मेरे लिए अब भी मेरे जीवन का सर्वाधिक विषादमय महीना है। हालाँकि मैं उन लोगों में हूँ जो भीतर ही भीतर रोते हैं, फिर भी जब कभी मैं सितम्बर के महीने में किसी नन्हें बच्चे को सिर झुकाए देखता हूँ तो मेरी आँखों में आँसू आ ही जाते हैं।

फ्रेरेन्त्ज़ मोरा - जन्म 1879, निधन 1934